Chapter-5

पंचम-अध्याय

भाव-पक्ष

"गोस्वामी हरिराय जी का शृंगार काव्य परम्परागत होते हुए भी अपनी निजी विशिष्टता रखता है। भक्ति एवं दर्शन के विविध प्रभाव उनके शृंगारपरक वर्णन में समाहित हो गये हैं"।

गोस्वामी हरिराय जी का काव्य-सौरभ भाव-सम्पदा के वैभव से जितना अभिमंडित है, उतना ही रसाप्लावित भी है। प्रस्तुत विवेचन में गोस्वामी हरिराय जी के काव्य की विभिन्न भाव-भूमियों का समाकलन ही अधिक समीचीन होगा।

भाव:-

भाव शब्द 'भू' धातु से करण अर्थ में निर्मित हुआ है तथा आचार्य भरत के अनुसार भावित, वासित तथा कृत उसके समानार्थक हैं। नाट्यशास्त्र में इसे स्पष्ट करने के लिये आचार्य भरत ने लिखा है कि 'लोक में यह प्रसिद्ध है --- अहो इस गंध से और इस रस से सब कुछ भावित हो गया है। अत: भावित का अर्थ होता है परिव्याप्त होना'। १

---

(१) 'भू इति करणे धातुस्तथा च भावितं वासितं कृतमित्यनर्थान्तरम्। लोकेऽपिच प्रसिद्धम्। अहो इनेन गंधेन रसेन वा सर्वमेव भावितमिति। तच्च व्यप्त्यर्थम्'।

-- नाट्यशास्त्र, आचार्य भरत, अध्याय ७, कारिका १ ।

भावों का स्पष्टीकरण करते हुये आचार्य विश्वनाथ ने लिखा है, 'किसी वस्तु या व्यक्ति के प्रति किसी की जो मानसिक स्थिति होती है, उसे भाव कहते हैं'। १ आचार्य शुक्ल के अनुसार 'काव्य का लक्ष्य भावों के उपयुक्त विषयों को सामने रखकर सृष्टि के नाना रूपों के साथ मानव-हृदय का सामन्जस्य स्थापित करना है। भाव ही कर्म के मूल प्रवर्तक और शील के संस्थापक हैं'। २ इस प्रकार आचार्य शुक्ल के काव्य में भावों को मानव हृदय की सम्पर्क-साध्य श्रृंखला माना है। ये भाव मन के कुछ विकार हैं जो अवसर आने पर प्रकट हो उठते हैं।

उपर्युक्त तथ्यों के परिप्रेक्ष्य में यह पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है कि भाव वस्तु-तत्व में संपृक्त एक निश्चित मनः स्थिति है जो रचना करने से पूर्व रचनाकार के हृदय में आलोड़ित हुआ करती है। रचनाकाल के समय कवि का मन उस विशेष प्रकार की मनोदशा से आवृत्त हो जाता है। आचार्य भरत ने इस स्थिति के लिये 'परिव्याप्त' शब्द का प्रयोग किया है।

'कृत' शब्द को आचार्य भरत भाव का समानार्थक मानते हैं। इसे स्पष्ट करने के लिये इस तथ्य को यदि इस प्रकार रखा जाये, तो सुगमता से स्पष्ट हो सकता है -- शोककृत, वात्सल्यकृत, हास्यकृत। इसका आशय हुआ कि भाव शोक, वात्सल्य, हास्य आदि का गुण है। उसका पृथक् कोई अस्तित्व न होकर, वह किसी अवस्था-विशेष का विशेषणात्मक अनुवर्ती स्वरूप है।

---

(१) देखिये - वाङ्मय विमर्श, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र,
- संस्क० द्वितीय, पृ० १०५।

(२) देखिये - रस मीमांसा - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल,
- संस्क० द्वितीय, पृ० १६१।

सैद्धान्तिक दृष्टि से इस कथ्य का औचित्य भी निर्विवाद है। कोई भी कवि कविता करने से पूर्व अपने मन में किसी अवस्था विशेष की अवधारणा करता है। यह अवधारणा ही 'भाव' है। इनसे कवि का मन भावित, वासित अर्थात् विभावित, सुवासित हो जाता है और वह स्थिति उसके मानस-लोक में परिव्याप्त हो जाती है।

आचार्य भरत कृत नाट्यशास्त्र के हिन्दी अनुवादक डा० ब्रजवल्लभ मिश्र ने भावों की विशद् व्याख्या करते हुए लिखा है, 'स्थायी भाव कवि के हृदय की रचना काल की वह अनुभूति है, जिससे प्रेरित एवं प्रभावित होकर कवि अपने कृतित्व की सृष्टि करता है। इसे स्थायी भाव इसलिये कहा गया है कि रचना के रूप में कवि के हृदय का वह प्रारम्भिक भाव लिपिबद्ध होकर स्थायित्व प्राप्त करता है। युग बदल जाने पर, ग्रन्थ के संस्करण बदल जाने पर और प्रयोक्ताओं की पीढ़ी बदल जाने पर भी कवि का वह भाव स्थायी रूप से उस रचना में विद्यमान रहता है। कालिदास कृत 'मेघदूत' के यक्ष की विरह-व्यथा कालिदास द्वारा विरचित शब्दावलि में स्थायी रूप से आलोकित है। उसे किसी भी युग में कोई भी व्यक्ति पढ़े, उससे करुण रस के स्थायी भाव 'शोक' की ही अनुभूति का आभास होगा। क्योंकि रचना के समय कालिदास के हृदय में 'शोक' की स्थिति ही परिव्याप्त थी'।१

विभाव:-

विभाव का अर्थ है हृदय का प्रभावित होना। स्थायी भाव से जब किसी का संबंध स्थापित होता है, उस समय उसका हृदय विषय की मूल अनुभूति से विभावित होने लगता है। सीधे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि विभाव हृदय के किसी स्थायी भाव से सराबोर होने की क्रिया का नाम है। काव्य शास्त्रियों ने इसके आलंबन और उद्दीपन दो विभेद किये हैं। आलंबन के अन्तर्गत आश्रय को स्वीकार किया गया है।

---

(१) हिन्दी नाटकों में अभिनय तत्व, - डा० ब्रजवल्लभ मिश्र (अप्रकाशित) पृ० ८६।

अनुभाव :- 'वाणी, अंग तथा सत्वविहित अभिनय जिसके द्वारा अनुभावित हो उसे अनुभाव कहते हैं'।१ अर्थात् भावों की अभिव्यक्ति के लिये तद् विषयक अनुकरण-परक चेष्टाएं अनुभाव कहलाती हैं।

संचारी भाव :- संचरणशील वे भाव जो समय-समय पर स्थायी भाव को पुष्ट करते रहते हैं, उन्हें संचारीभाव कहा जाता है। संचारीभावों की संख्या आचार्यों ने तैंतीस बतलाई है, - निर्वेद आवेग, दैन्य, श्रम, मद, जड़ता, उग्रता, मोह, विबोध, स्वप्न, अपस्मार, गर्व, मरण, आलस्य, अमर्ष, निद्रा, अवहित्था, औत्सुक्य, उन्माद, शंका, स्मृति, मति, व्याधि, त्रास, ब्रीड़ा, हर्ष, असूया, विषाद धृति, चपलता, ग्लानि, चिन्ता, एवं वितर्क।२

कथ्य एवं अन्वेषण :-

गोस्वामी हरिराय जी के काव्य में भक्तिजन्य वात्सल्य, शृंगार एवं शांत नामक रसों का प्राधान्य रहा है। सर्व प्रथम उनके काव्य में व्यवहृत वात्सल्य रस के भावों पर विचार प्रस्तुत किया जा रहा है।

---

(१) 'वागंगाभिनयेनेह यतस्त्वर्थो अनुभाव्यते। वागंगोपांग संयुक्तस्त्वनुभावस्तत: स्मृत:
- आचार्य भरत, नाट्य शास्त्र, अध्याय ७, श्लोक ५।

(२) 'निर्वेदग्लानिशंकाख्यास्तथासूया मद: श्रम:। आलस्यमं चैव दैन्यं च चिन्ता मोह: स्मृतिर्धृति:। व्रीड़ा चपलता हर्ष आवेगो जड़ता तथा, गर्वो विषाद औत्सुक्यं निद्रापस्मार एवच। सुप्तं विबोधो अ मर्षश्चाप्यवहित्थमथोग्रता। मतिव्याधिस्तथोन्मादस्तथा मरणमेव च। त्रासश्चैव वितर्कश्च विज्ञेया व्यभिचारिण:'। - वही, अध्याय ६, श्लोक १८ से २१ तक।

-::वात्सल्य::-

साधारण अर्थ में वात्सल्य का तात्पर्य शिशु-स्नेह से ग्रहण किया जाता है। हिन्दी के भक्ति साहित्य में वात्सल्य - भाव के अनुसार भक्त आराध्य के प्रति, अपने शिशु की भाँति प्रेम व्यक्त करता है। वह शिशु जानकर ही अपने आराध्य की सेवा-शुश्रूषा करता है, उसे लाड़ लड़ाता है। ब्रजभाषा के कृष्ण-भक्त कवियों ने इसी भाव को अधिक महत्व दिया है। सूरदास, नन्ददास, परमानन्द दास आदि अष्टछापी कवियों का काव्य इस सन्दर्भ में विशेष उल्लेखनीय है। गोस्वामी हरिराय जी ने भी इस बहु-चर्चित प्रसंग को बड़े ही सुन्दर ढंग से अभिव्यक्त किया है।

कृष्ण जन्मोत्सव के समय कवि अपनी उपस्थिति का आभास कभी नन्द-यशोदा के माध्यम से कराता है तो कभी ढाँढ़ी-ढाँढिन के द्वारा। कभी वह गोप- ललनाओं के यूथ में खड़ा इस नटखट नन्द-किशोर के दर्शन करता है तो कभी अनेकानेक ग्वालबालों के झुन्ड में सम्मिलित होकर उस आनन्द का रस-पान करता है। तात्पर्य यह है कि गोस्वामी हरिराय जी बालक कृष्ण के रूप-माधुरी के उपासक हैं और उनकी शिशु - छवि का पान करते वह अघाते नहीं है, इसके लिए उन्हें चाहे गोपियों के मध्य में जाना पड़े, चाहे ग्वाल-बाल के समूह में सम्मिलित होना पड़े और चाहे नंद-यशोदा ही क्यों न बनना पड़े। उनका मन बालक कृष्ण की रूप माधुरी का पान किये बिना नहीं रह पाता। इसी प्रकार का एक पद दृष्टव्य है, जिसकी प्रत्येक पंक्ति में कवि की वात्सल्य-जन्य भावनायें मुखर हो उठी हैं :-

बारी बारी ब्रजराज कुमर, झूलो पलना।
छोड़ो किन आर ऐसी, मेरे ललना ॥
देखौ देखौ ब्रज-जुवती जन ठाड़ी मुख देखैं।
नैन खोलि, मधुरे बोलि, जनम करौ लेखैं ॥

हाँ हाँ हरि नैक रहौ, विनवत तैरौ तात ।
रोस कीजै, तन छीजै, काहे ना मुसकात ।।
मेरौ जानि टारयौ कह्यौ तेरी हौ मात ।
चाहैं सौ माँगि लेहु मन की कहौ बात ।।
अंसुआ भरे दृगन हँसे, आयि गरे लागे ।
'रसिक प्रीतम' करुनाकरि जननी प्रेमपागे ।।१

पद का प्रारम्भ माँ के समर्पण-भाव से होता है । माँ अपने सुकुमार पुत्र पर न्यौछावर हो रही है, वह अपने शिशु को अनेक उपायों से मना रही है । 'हाँ हाँ हरि नैक रहौ विनवत तेरौ तात' में दैन्य-भाव की झलक देखी जा सकती है । 'रोस की जै तन छीजै' में माँ एक शास्वत-सत्य के द्वारा कृष्ण को बहला रही है कि रोने से तुम्हारा सुकुमार शरीर क्षीण हो जायगा । वह कृष्ण से कहती कि मैं तेरी माँ हूँ अत: तू मेरा कहा मत टाल, इसमें कृष्ण को मनाने का यत्न किया गया है । मातृत्व में सर्व-समर्पण के भाव निहित रहते हैं, इसी से माँ कहती है कि तुझे जो भी अच्छा लगे, मुझ से माँग ले । पद के अन्त में सात्विक-भावों की योजना कर कवि ने आश्रय को अभीष्ट की प्राप्ति करा दी है अर्थात् माँ यशोदा अपने पुत्र को मनाने में सफल हो जाती है, कृष्ण हँस कर उसके गले से लग जाते हैं । इस पद में अनेक भावों को योजित किया गया है । स्थायीभाव के रूप में शिशु-स्नेह यहाँ प्रमुख हैं । आलम्बन यहाँ कृष्ण है, आश्रय माँ- यशोदा हैं । पुत्र से आलिंगन, अंगस्पर्श आदि अनुभाव हैं, दैन्य, चिन्ता आदि संचारी भाव हैं । पुत्र को रोना यहाँ उद्दीपन है, इनसे पुष्ट होकर स्थायीभाव (अपत्य-स्नेह) रस कोटि तक पहुँचता है ।

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद सं० १८ ।

जहाँ कवि ने एक ही पद में अनेक भावों को संयोजित किया है, वहाँ एक ही पद में किसी विशेष भाव के चित्रण में भी कवि ने रुचि प्रदर्शित की है। प्रस्तुत पद में हर्ष को प्राधान्य दिया गया है :-

जसुमति सुत जनम सुनि फूले ब्रजराज हो ।
बड़े भाग खुले करन आये सुर- काज हो ।।
गाय ब्रज सिंगरी सब, बसन भूषन साज हो ।
देखन कौं आय जुरे, गोप गोपि समाज हो ।।
सिगरे मिलि गावैं नाचैं, छांड़ि लोक-लाज हो ।
दूध, दही, मक्खन लै छिरकैं करि गाज हो ।।
नन्द सबन दीने बहु धेनु बसन नाज हो ।
प्रगट भये 'रसिक प्रीतम' गोकुल सिरताज हो ।।१

इस पद में सामूहिक उल्लास से हर्ष के भाव तो व्यक्त होते ही हैं, साथ ही कवि ने, वातावरण को उद्दीप्त करने के लिए विभिन्न उद्दीपनों की भी योजना की है, इसमें गायों को अलंकृत करना, गोप-गोपि समाज का आकर एकत्र होना, सभी का उमंग में नाचना गाना, दूध, दही छिड़कना आदि प्रसंग वातावरण को उद्दीप्त करते हैं।

वात्सल्य-वर्णन में कवि ने कृष्ण की विविध झाँकियाँ प्रस्तुत करके अनेक भावों को चित्रित किया है। इसमें गर्व, हर्ष की भाँति मोह, आवेग, औत्सुक्य, चपलता, चिन्ता आदि विविध भावों को कवि ने कुशलता से अंकित किया है। छोटे-छोटे वाक्यों की सरस पदावली में कवि ने वात्सल्य-भावों को अनेक रूप में उभारा है। वात्सल्य के स्वाभाविक वर्णन में भी कवि की सूक्ष्म दृष्टि भाव-सम्पादन में पर्याप्त सफल रही है। इसी प्रकार का एक पद द्रष्टव्य है :-

---

(१) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद सं० १७ ।

हाँ हाँ लेहु स्कौं कौर ।
बहुत बेर भई है भूखैं, देख मेरी ओर ।
मेलि मिसरी दूध औट्यौ, पियौ होइ है जोर ।
अब हीं खेलनि टेरि हैं, तेरे ग्वार भयौ अति भोर ।
बैठि जननी गोद जेंमन लगे, गोविन्द थोर ।
'रसिक' बालक सहज लीला करत माखन चोर ।।१

इस पद में गोस्वामी हरिराय जी ने 'हाँ हाँ' शब्द के माध्यम से वात्सल्य-स्नेह को पुष्ट करने का यत्न किया है। शिशु की वर्जना में माँ का आग्रह इन शब्दों से और भी मुखरित हो उठा है। कृष्ण बार-बार मना कर रहे हैं कि अब उन्हें भूख नहीं है, किन्तु माँ अपने पुत्र को एक ग्रास ही खिलाने की चेष्टा में आतुर है।

माँ यशोदा अपने पुत्र को अत्यधिक स्नेह करती है, वह अपने पुत्र की हर क्रिया पर न्यौछावर है। कभी वह अपने पुत्र के पैर पकड़ कर विनय करती है तो कभी उसे विविध व्यंजन खिला कर प्रसन्न रखने का यत्न करती है। इसी प्रकार माँ की अभिलाषाओं को व्यक्त करता हुआ यह पद भी द्रष्टव्य है :-

कब मेरौ ढ़ोटा पाइन चलि है, बल संग लै बैरी दल दलि है।
तेरे पास रखी तेरी लकुटी, लैकरि लाल चढ़ाओ भ्रकुटी ।।२

पुत्र भावी जीवन के लिये सुख प्रदान करने वाला होता है। हर माता-पिता की दृष्टि उसके ऊपर अवलम्बित रहती है, माँ यशोदा भी कृष्ण से आकांक्षा करती है कि भविष्य में वह समर्थ होकर उसकी पूर्ण रक्षा करेगा। प्रस्तुत पद

---

(१) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- ५६ ।
(२) वही, पद संख्या- २१ ।

में गोस्वामी हरिराय जी ने माँ के आकांक्षा भावों को ही अधिक व्यक्त करने की चेष्टा की है।

माँ यशोदा अपनी भूत-कालीन घटनाओं से परिचित होने के कारण भविष्य के प्रतिशंकित है, उसकी कोख में कृष्ण का जन्म बड़े दु:खों के पश्चात् हुआ है:-

क्यों रोवे मेरो बहोत दुखन को ।१

इस पंक्ति में माँ-यशोदा बालक कृष्ण को क्रोधित हुआ जानकर उसे हँसने मुस्कराने के लिये प्रेरित करती है। गोस्वामी हरिराय जी ने मातृ-हृदय के चित्रण करने में बड़ी कुशलता प्रदर्शित की है। वात्सल्य के संदर्भ में स्नेह-शिक्त अनुरोध, आशा, आकांक्षा, चिन्ता, बालक को डराना, पुचकारना, मनाना, मोह ग्रस्त होना आदि भाव समाविष्ट हैं।२

'दामोदर लीला' में माँ-यशोदा अपने वत्स कृष्ण को रस्सी से बाँध कर उसे डराना धमकाना चाहती हैं, किन्तु अपने सुकुमार को त्रास देकर उसका हृदय विक्षोभ से भर उठता है। वह न चाहते हुए भी अपने पुत्र को शारीरिक दंड देती है, किंतु कुछ समय पश्चात् ही उसका वात्सल्य पूर्ण हृदय अपने इस कार्य को निंदनीय घोषित कर देता है। माँ का ममत्व अपने बेटे के रुदन को सुनकर द्रवित हो उठता है। उसके हृदय में मोहवश चिन्ता का उदय होता है। चिन्ता का एक और रूप माँ के हृदय में तब उत्पन्न होता है, जब वन से गाय चराकर कृष्ण विलम्ब से लौटते हैं। माँ उस समय चिन्ता से आतुर जान पड़ती है, वह अपने

---

(१) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद सं० १६।
(२) वही।

पुत्र के विलम्ब से भीन लौटने पर बेचैन हो उठती है ।--

जसुमति अति औसेर करे ।
अजहु न आये बन ते मोहन बार-बार मन सोच धरे ।
छिन-छिन बूझत सब सखियन सौं, दोऊ नैनन नीर ढरे ।
देखन पठवति बार बार ही दूरि जहाँ लौं खरिक परे ।
अति आतुर मुरली की धुनि सुनि, व्याकुल क्यौं हू न हृदै ठरे ।
'रसिक सिरोमनि' मिले नंद सुत, बदन चूमि के अंक भरे ।।१

इस स्थल पर मातृ-हृदय को अनेक भावों से अभिमंडित दिखलाया गया है । 'चिन्ता, आतुरता, मन की अस्थिरता तथा आवेग जैसे भाव उद्दीप्त होकर माँ के अन्तश: को झंकृतकरते रहते हैं । पुत्र के विछोह से व्याकुलता बढ़ती जाती है, अन्त में अभीष्ट की प्राप्ति पर हर्ष जन्य आवेग की स्थिति आजाती है और माँ अपने कृष्ण को आलिंगन में बाँध कर उसका मुख चूम उठती है । इस प्रकार कवि ने एक ही प्रसंग के सीमित वर्णन में भी अनेक भावों की सृष्टि कर काव्य को मधुर और उत्कृष्ट बना दिया है ।

गोस्वामी हरिराय जी द्वारा वात्सल्य रस के प्रसंग में कृष्ण द्वारा प्रकटित भावों का प्रकाशन भी अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से हुआ है ।

गाय चराते समय कृष्ण को भूख लग उठती है, किन्तु उनके नियत समय पर 'छाक'[२] नहीं पहुंच पाती, इससे कृष्ण व्याकुल हो उठते हैं । प्रमुख रूप से औत्सुक्य[३] भाव प्रस्तुत पद में देखे जा सकते हैं :-

---

(१) गोस्वामी श्री हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद सं० ६४ ।
(२) छाक - 'कलेवा' सम्बन्धी एक विशेष प्रकार का भोज्य प्रसाधन ।
(३) 'अभीष्ट की प्राप्ति में विलम्ब का न सहसकना 'औत्सुक्य' कहलाता है'।
-- काव्य शास्त्र की रूप रेखा - पं० श्यामनन्दन शास्त्री, पृष्ठ- ११६ ।

मैया हौ, अबहु छाक न आई !
भई अबेर भूख लागी है, काहे बेर लगाई !
देखौ तौ मारग मैं सब मिलि, को नहि आज पठाई !।१

कवि ने स्वाभाविक घटनाओं के माध्यम से ही विविध भावों को उभारा है कहीं-कहीं कुछ विचित्र घटनाओं का वर्णन भी कवि ने स्वाभाविक रूप से ही कर दिया है, बालक कृष्ण माता-यशोदा के पुण्य प्रताप को स्वीकारते हुए कहते हैं :-

देख्यौ एक अचंभो आज ।
किनहुं न लख्यौ, लख्यौ बल भैया, मारौ छिन ही माँझ ।
धेन चरावत धेनुक आयौ, दैत्य रूप धरि मारन काज ।
रहे सकल ब्रज-बालक खेलत, निकसे व्हाँते साँझ ।
कुशल परत है तेरे पुन्यन, जहाँ जहाँ हम जात ।
'रसिक सिरोमनि' सुत की बातैं सुनि-सुनि फूलत मात ।।२

कवि की प्रांजल मेधा ने इस पद में दो रसों का सुन्दर ढंग से समन्वय किया है । इस पद में प्रारम्भिक पंक्तियाँ अद्भुत रस के स्थायी भाव विस्मय से अभिमंडित हैं, तदनंतर अन्तिम पंक्तियों में वात्सल्य का सुन्दर निर्वाह हुआ है । गोस्वामी हरिराय जी द्वारा दो विभिन्न रसों का एक ही सीमित-पद में निरूपण करना उनकी समाहार-शक्ति का अद्वितीय प्रमाण है ।

गोस्वामी हरिराय जी के काव्य में सुखेतर भावों को अधिक स्थान नहीं दिया गया । विस्मय, क्रोध, त्रास, शंका, व्याधि आदि संचारी भावों का उनके काव्य में कम ही प्रयोग हुआ है । वात्सल्य रस में हर्ष, गर्व, आवेग जैसे सुखद

---

(१) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद सं० ५८ ।
(२) वही, पद सं० ७६ ।

भावों का ही अधिक प्राबल्य रहा है। अन्य भाव यत्किंचित ही हैं और विशेष महत्वपूर्ण भी नहीं। गोस्वामी हरिराय जी के काव्य-सृजन का मुख्य ध्येय कृष्ण की लीलाओं का गान करना ही था, इस प्रसंग में भाव-प्रवणता के स्थलों पर कवि अधिक संवेदनशील हो उठा है, यही कारण है कि भावाभिव्यक्ति अपने उत्कृष्ट रूप में विद्यमान है।

वात्सल्य के अतिरिक्त गोस्वामी हरिराय जी ने शृंगार एवं शान्त रस के भावों का भी अपने काव्य में कुशलता से चित्रण किया है। वात्सल्य के पश्चात् शृंगार रस के कुछ भाव-चित्र भी दर्शनीय हैं :-

-:: शृंगार ::-

गोस्वामी हरिराय जी ने अपने दार्शनिक विचारों के अनुसार गोपीभाव से कृष्ण की उपासना की थी। गोपांगनाओं के यूथ में सम्मिलित हो अपने 'रसिक-सिरोमणि' की सरस क्रीड़ाओं का वह आस्वादन करता रहा है। यही कारण है कि कवि के काव्य में रस-प्रवाह का जो प्रबल-वेग शृंगारपरक रचनाओं में दिखाई देता है, वह अन्यत्र नहीं।

शृंगार वर्णन में वियोग-पक्ष का चित्रण भाव-वैविध्य की दृष्टि से पूर्ण सम्पन्न है, किन्तु संयोग पक्ष के चित्र भी बड़े सजीव भावों से अनुरंजित हैं। गोस्वामी हरिराय जी ने परम्परा का अवलम्ब ग्रहण करते हुए भी यत्र-तत्र अपने मौलिक उद्गारों को भी विविध चित्रों में व्यक्त किया है. संयोग के कुछ भाव-चित्र द्रष्टव्य हैं :-

-:: संयोग ::-

संयोग में लज्जा, संकोच, अधीरता जैसे अनुभावों का आभास प्रणय की प्रारम्भिक अवस्था में होने लगता है। विवाह के उपरान्त नव-वधू अपने पति के सन्मुख बैठी हुई भोजन करने में अत्यधिक सकुच रही है। दूसरी ओर कृष्ण प्रेमाधिक्य के कारण बार-बार राधा की मनुहार कर रहे हैं कि वह भोजन करे, किन्तु राधा हर बार बर्जना

ही करती जा रही है, अन्त में बड़ी ही लज्जा से आवृत हो भोजन प्रारम्भ करती है :-

जैंमत लाल लाड़ली राजे ।
करि मनुहार जिमावत प्यारी, प्यारी जैंमत लाजे ।१

आगे चल कर यही रति-रस निमग्ना राधा अपने इस संकोच को धीरे-धीरे त्यागने लगती है । वह किंचित लज्जा या कृष्ण को अपने हाथ से खिलाती है और स्वयं उनके हाथ से खाती भी है ।--

जैंमत ललना लालन संग ।
मनिमय महल विराजत दोऊ, परदा परे हैं सुरंग ।
प्यारी कौर देत पिय के मुख, प्यारी मुख में मेलैं ।
'रसिक प्रीतम' रस रीति पियारी, रति-प्रति कंठ भुजा दोऊ भेलैं ।।२

यह स्थिति एकान्त की है, यहाँ राधा को न तो गुरुजनों का भय ही है और न ही सामाजिक-भर्त्सना का 'खटका' । अभी यह नि:संकोच की स्थिति स्थायित्व ग्रहण नहीं कर पायी, यही कारण है कि अचानक प्रिय के आ जाने पर चौंक कर पुन: लजा जाना उसकी प्रकृति से विलग नहीं हो पाया है :-

आवत ही पिय के चौंक लजावन लागी ।।३

---

(१) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद सं० १२७ ।
(२) वही, पद संख्या- १३१ ।
(३) वही, पद संख्या- १३७ ।

धीरे-धीरे प्रिय के निरंतर सानिध्य में रहने से संकोच का पर्दा उठ तो जाता है, किन्तु फिर भी नारी-सुलभ वृत्तियों के अनुरूप विशेष वातावरण में लज्जा तथा संकोच अचानक ही प्रकट हो उठते हैं। वृन्दावन की निकुंज में प्रात: काल दोनों उठ कर खड़े हुए हैं। दोनों हाथों को बांध कर अगड़ाई लेते ही, विगत सुरति-रस का स्मरण हो उठता है, तत्काल ही स्वाभाविक लज्जा के वशीभूत होकर नायिका संकोच का अनुभव करने लगती है, कवि ने इस चित्र को बड़े ही सजीव ढंग से प्रस्तुत किया है :-

श्री वृन्दावन नव-निकुंज, ठाड़े उठि भोर ।
बाहैं जोरि, बदन मोरि, हंसत सुरति रस विभोर ।
सकुचत पुनि कछु लजात, नैनन की कोर ।।१

पति का सहवास लज्जावश उत्पन्न संकोच को कम करने लगता है, एक समय यही लज्जा के भाव पूर्णत: विलीन हो जाते हैं। कभी यह प्रमोन्मत्ता-नायिका प्रियतम का सानिध्य पाकर लज्जा का अनुभव करती थी, वह अब प्रिय का सानिध्य पाकर अत्यन्त अधीर हो उठती है, वह अपने तन-मन की सुधि ही विसरा देती है :-

पान खवावत करि करि बीरी ।
इकटक व्है मोहन मुख निरखत, पलक न परत अधीरी ।
हंसत निहारत बदन स्याम को, तन की सुधि विसरीरी ।
'रसिक प्रीतम' के अंग संग मिलि छतियाँ भईं अतिसीरी ।।२

यहाँ नायिका की अधीरता प्रिय के सामीप्य में भी प्रकट हो रही है, किन्तु स्वेच्छा की पूर्ति होने पर यही उद्वेग लज्जा के सरल वातावरण में परिवर्तित

---

(१) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद सं० १३८ ;
(२) वही, पद संख्या- १३२ ;

हो जाता है। उपर्युक्त पद में औत्सुक्य, आवेग, मोह, उन्माद, हर्ष, आदि विविध संचारी भावों को समन्वित किया गया है। इस पद में केवल संचारी भावों के प्राबल्य से ही रस-परिपाक सम्भव हो सका है। इस पद में संचारी भावों के वृत्त में ही अन्य भावादि अंतर्भूत हैं। यहाँ रति स्थायी भाव है, आलम्बन नायक और आश्रय नायिका है। उद्दी-पन विभाव में नायिका की चेष्टाएं देखी जा सकती हैं, उद्वेग, स्नेह-स्निग्ध अवलोकन आदि अनुभाव हैं, जिनके संयोग से श्रृंगार रस पुष्ट हुआ है।

दाम्पत्य प्रेम में लज्जा एवं संकोच कुछ विशेष स्थितियों में ही उत्पन्न होते हैं। ये भाव प्रेम की प्रारम्भिक अवस्था में तथा अभिसार-कालीन हाव-भावों के माध्यम से उत्पन्न होते हैं, किन्तु जब नायिका अन्य सहचरियों के साथ समान रूप से आसक्त होते हुए भावों को प्रकट करती है, वहाँ झिझक, लज्जा, संकोच के भाव न होकर स्वच्छन्द मनोरंजक-उल्लास के भाव परिलक्षित होते हैं। 'दानलीला' में जब नायक श्रीकृष्ण इन ब्रज वनिताओं को निर्जन-मार्ग में रोक कर इनका अंचल पकड़ते हैं, उस अवस्था में गोप ललनाएं कह उठती हैं :-

चंचल नयन निहारिये अति चंचल मृदु बैन।
करि नहिं चंचल कीजिए, तजि अंचल चंचल-नैन ।।१

यहाँ नायक के द्वारा अंचल पकड़ने पर नायिका क्रियात यत्न-साध्या न होकर केवल वाणी से ही वर्जना कर रही है, इसमें अंचल पकड़े ही रहने का मूक-समर्थन भी है और प्रेमाभिव्यक्ति का प्रतिकार भी। हाव-भावों के इसी प्रदर्शन में अनुभावों के संकेत भी बड़े सार्थक रूप में व्यक्त हुए हैं :-

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- १०४।

मोहन कंचन कलसिका, लीन्हीं सीस उतारि ।
भ्रमकन बदन निहारिकैं सो ग्वालिन अति सुकुमारि ।।१

अनुभाव-योजना के अन्य चित्र भी द्रष्टव्य हैं :-

-- नई हँसनि, चितवन नैनन की, अधरन फरकत न्यारी ।।२
-- आवत ही पिय के चौंकि लजावन लागी ।
देह प्रस्वेद मानो रस सागर मैं बोरि काढ़ी ।।३
-- फरकत बाँई आँख, अधरा हू फरकत , अरु फरकत बाँई बाँह ।।४

इस प्रकार कवि ने पूर्ण रस संचार के लिए स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव, संचारीभाव, सात्त्विक भावों के साथ-साथ आलम्बन,उद्दीपन आदि सभी रस-उपकरणों पर ध्यान रखते हुए भावों के विभिन्न रूप गठित किए हैं ।

रस-परिपाक में सहायक अन्य भावों की तरह उद्दीपन विभाव के चित्र भी कुशलता से अंकित हुए हैं । संयोगावस्था में उद्दीपक वातावरण की सृष्टि में कवि ने विशेष चित्र निरूपित नहीं किये, किन्तु इस प्रसंग में उसके यत्किंचित चित्र भी प्रभावशाली बन पड़े हैं । एक पद में संयोग वर्णन के उद्दीपक विभावों का स्वरूप द्रष्टव्य है :-

दोऊ मिलि पौढ़े एक ही संग ;
सिसरी व्यार, फरोखन आवत, करत केलि रस रंग ।
गरजत गगन, दामिनी कौं-घत, झलकत दोऊ अंग ।
'रसिक प्रीतम' ललतादिक गावैं, मधुरी तान तरंग ।।५

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- १०४ ।
(२) वही, पद संख्या- १३४ । (४) वही, पद संख्या- २२१ ।
(३) वही, पद सं० - १३७ । (५) वही, पद संख्या- २०१ ।

इसी प्रकार का एक अन्य चित्र भी प्रस्तुत है :-

सबद सुनायौ दादुर मौर ।
ठौर ठौर मेघ मलार गायौ ।
'रसिक प्रीतम' तुम बिन ऐसे समै ।
कैसे हो तुम न भायौ ।।१

इन पदों में स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव, संचारी भाव आदि सभी की स्थिति अन्तर्भूत है, किन्तु आलम्बन और उद्दीपक -विभाव अपने प्रबल स्वरूप को व्यक्त कर रहे हैं। ऐसे प्रसंग में केवल उद्दीपक विभावों के सम्बल पर ही अन्य भाव-अनुभावों को बल मिलता है और मूल भाव स्थायित्व ग्रहण करके रस कोटि तक पहुंचने में समर्थ होता है। उपरिलिखित प्रथम पद में उद्दीपक विभाव मूल भाव रति को उभारने में सहायक सिद्ध हुए हैं, अनुभाव, संचारी-भाव, आलम्बन, आश्रय आदि की स्थिति पर विशेष ध्यान न देकर कवि ने यहां केवल उद्दीपक विभावों को ही प्रधानता दी है, इन्हीं के सहारे भावों को रस कोटि तक पहुंचाने में सफलता प्राप्त की है। गोस्वामी हरिराय जी के काव्य में इस प्रकार की भाव-योजना अपने तीक्ष्ण प्रभाव को लिए हुए प्रकट हुई है, जिससे पाठक का मानस-पटल पद-पद पर रस सिक्त होकर काव्य - सरिता में मन्थर-मन्थर गति से तैरता चला जाता है।

गोस्वामी हरिराय जी ने भक्ति निहित श्रृंगार को वैविध्य के साथ प्रस्तुत किया है। कहीं-कहीं उन्होंने श्रृंगारिक-वर्णनों में अति स्थूल चित्र अपनी रसिक वृत्ति के अनुरूप निरूपित किए हैं। कहीं-कहीं कवि विशुद्ध नायक व नायिका के क्रीड़ा-विलास में भी निमग्न दृष्टि-गोचर होता है, किन्तु अधिकांश में उनका अभीष्ट कृष्ण चरित्र की रसमयी झांकी को विविध रूपों में चित्रित करना ही रहा है। यही कारण

---

(१) रसिक बानी- लेखक का निजी संग्रह, पद संख्या- ३७ ।

है कि शृंगारिक रचनाएं स्वच्छन्दतापूर्वक लिखी गई हैं, और विशेष आकर्षक बन पड़ी हैं ।

गोस्वामी हरिराय जी की शृंगारिक रचनाएं हाव एवं अनुभाव की विविध अवस्थाओं को व्यक्त करती हैं । इनमें हाव के चित्र विशेष सशक्त जान पड़ते हैं ।

०::हाव::० [१]

अनेक आचार्यों ने काव्य-सिद्धान्तों के सन्दर्भ में हावों की चर्चा की है ।१ संयोगावस्था में स्त्रियों की चेष्टा-विशेष को हाव कहा जाता है । डा० नगेन्द्र के अनुसार, 'भृकुटी तथा नेत्रादि के विलक्षण व्यापारों से संभोगेच्छा प्रकाशन भाव ही 'हाव' कहलाता है । हाव आश्रयगत भी होता है और आलम्बन गत भी । आश्रयगत हाव का दोहरा कार्य होता है, आश्रय की भोगेच्छा का प्रकाशन और आलंबन का 'भावोद्दीपन' ।२

गोस्वामी हरिराय जी के काव्य में शृंगारिक पदों में हावों के सूक्ष्मतम चित्र प्रस्तुत किए गए हैं, सर्व प्रथम संयोग-शृंगार के अन्तर्गत प्रमुख-प्रमुख पर्व व उत्सवों पर सामूहिक केलि विलास में इस प्रकार के मनोहारी दृश्य देखे जा सकते हैं ।

होली उत्सव के अवसर पर प्रथम,नायिका का चित्र प्रस्तुत किया गया है, तत्पश्चात् उसके हावादि स्पष्ट कर उस चित्र को सजीव बनाया गया है :-

---

(१) 'भावातिरिक्तं सत्वंहि व्यतिरिक्तं, संयोनिषु ,
नैकावस्थान्तरगतं हावं तमिह निर्दिशेत् ।
-- नाट्यशास्त्र, आचार्य भरत, अध्याय-२४, श्लोक-९

(२) हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास, डा० नगेन्द्र,
-- भाग षष्ठ, पृष्ठ- १९३ ।

फागु खेले राधा गोरी ।
श्री वृषभानु नंदिनी, भली बनी यह जोरी ।
चारु अबीर, गुलाल लसत तन, बिच-बिच राजत रोरी ।
- - - - - - - - - - - - ।
नूपुर रुनित, कुनित कटि मेखल निरखि मदन मति भोरी ।
रीझि रीझि तब 'रसिकराय' कौं मृदु मुसकनि मुख मोरी ।।१

प्रस्तुत चित्र में नायिका का मृदु मुस्कराकर मुख मोड़ना ही नायक के प्रति उसके अभीष्ट का समर्थन है । नायिका का इस प्रकार भाव-प्रकाशन उसके लज्जावृत शील एवं संयोग जन्य विलास हेतु बड़ा ही सूक्ष्म संकेत है । इस प्रकार के हाव शृंगार रस में उद्दीपक विभाव का कार्य सम्पन्न करते हैं । इसी प्रसंग में एक अन्य स्थल पर नायिका की और भी चेष्टाएं द्रष्टव्य हैं :-

विविध भाव मनहि मन संचति मुसिकात रति रन धीर ।
दोऊ ग्रहे कर गहैं बलि बलि कैं हरखि चलि चन्द्रावलि ।।२

यहां पर 'रतिरणधीरा' नायिका द्वारा अनेक भावों को मन में विचार कर मुस्कराना, प्रस्तुत वातावरण की भाव-भूमि को और भी उन्मुक्त तथा सरस बना देता है । इसी प्रकार सामूहिक उल्लास में भी हावों का प्रदर्शन प्रस्तुत है :-

उत तैं जाइ नन्द लाड़िलौ इततैं नन्द कुमार ।
पुलकित तन, निरखति नैननि करै घूंघट जोर जुहार ।
- - - - - - - - - - ।
कोऊ पिचकारिन छुटात है, मीड़ित अंग बचाइ ।

---

(१) रसिक बानी- लेखक का निजी संग्रह, पद संख्या- १५ ।
(२) वही, पद संख्या- १६ ।

कौऊ प्यारी उलटि जात है, सरस रंग लै ग्वारि ।।१

आँखों के माध्यम से अनेकानेक भावों का अभिव्यक्त होना प्रसिद्ध रहा है। कवि के कथन में भी इसका समर्थन है :-

नैना तेरे अति रसमाते ।
इन्ह महिं अरुन अरुन डोरे कछु लागत सहज सुहाते ।
कबहुक इकटक देख रहत, कबहुँक मुरि मुरि मुसकाते ।
'रसिक प्रीतम' संग निसदिन विलसत, नैक नहीं सकुचाते ।।२

हावों के द्वारा भावों की अभिव्यक्ति का यह सूक्ष्मतम संकेत निश्चय ही आँखों द्वारा कुशलता से व्यक्त हुआ है। संयोग शृंगार के प्रसंग में उन्मुक्त नायिका की ये स्वाभाविक क्रियाएं भी कितनी अर्थ संगत हैं :-

रहत करि नीची नीची नारि, रूखी रूखी अँखियन देखि रही पिय ओर
बदन निहारत अँचरा ऐंचत, ठिठकि रही लाज जोर ।
आलिंगन देत लेत उसाँस, सकुचत जिय जानि कुच कठोर ।
'रसिक प्रीतम' के अंग परसि , रस परवस भई, क्रीड़त है गयौ भोर ।।३

इस प्रकार के हाव-भाव नायिकाओं की विभिन्न क्रियाओं द्वारा स्पष्ट होते हैं। ये हाव जितने सूक्ष्य व सांकेतिक होते हैं, उतने ही सरस व मनोहारी प्रतीत होते हैं। गोस्वामी हरिराय जी के काव्य में हाव-भावों की सुंदर योजना सम्पन्न हुई है।

---

(१) रसिक बानी-- लेखक का निजी संग्रह, पद संख्या- १६ ।

(२) --- गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद सं० १४० ।

(३) वही, पद संख्या- १५२ ।

स्थायीभाव, विभाव, अनुभाव,
संचारीभाव, आदि विविध उपकरणों के सम्पादन से कवि ने अपने अभीष्ट रस को विविध भाँति से पुष्ट किया है। कवि के विविध-भाव अपनी स्वाभाविक गरिमा के साथ पूर्ण सम्पन्न प्रतीत होते हैं। इनमें शास्त्र सम्मत समस्त सिद्धान्तों का सायत्न पालन नहीं किया गया है, यथा संयोग-जन्य लीला, किलकिंचित, विभ्रम, चकित, मद, विच्छप्ति तथा कुट्टमित जैसी स्वाभाविक चेष्टाओं का यत्र-तत्र आभास तो होता है, किन्तु कवि ने इन सभी चेष्टाओं को यथा रूप सालक्ष्य अपने काव्य में प्रयुक्त नहीं किया।

पिछले पृष्ठों पर कहा जा चुका है कि गोस्वामी हरिराय जी एक भक्त कवि थे और 'भक्तों का शृंगार वर्णन उनकी साधना की आध्यात्मिक पृष्ठ भूमि के अनुसार था। इसलिए शास्त्रीय रीति पर ध्यान देने की उन्हें कोई आवश्यकता न थी।'[१]

संयोग श्रृंगार का प्रारम्भ कृष्णा की बाल-लीलाओं से ही देखा जा सकता है। गोस्वामी हरिराय जी ने श्रृंगार के प्रसंग को किसी नये परिच्छेद में प्रारम्भ से न उठा कर उसे मुक्तक पदों में यत्र-तत्र बिखेर कर रखा है। कृष्णा के बाल चरित्र से ही उनकी रतिकेलि की प्रारम्भिक परिस्थितियों के चित्र देखे जा सकते हैं। 'गाय चरावन' के प्रसंग में एक पद द्रष्टव्य है :-

गाय चरावन चले प्रभात।
कर गहि बेनु लकुटि कटि बाँधे, पीताँबर फहरात।
आगे बेनु हाँकि ग्वालन संग, पाछे लगि बतरात।
दै संकेत चलत बढ़ि आगे, फिर-फिर देखत जात।
अति आतुर ब्रज जुवतिन कौं कछू, सैन देत मुसकात।

---

(१) भक्त कवि व्यास जी, वासुदेव गोस्वामी, पृष्ठ- १५४।

नव-निकुंज सकेत ठौर को, मिस करि संग लगात ।
अति सुजान काहू न जनावत, अपने मन की बात ।
- - - - - - - - ।
'रसिक सिरोमनि' हरि लीला रस, तजि कैं कछु न सुहात ।।१

मध्य-कालीन भक्त कवियों ने कृष्ण के लोक-रक्षक व लोक-रंजक दोनों ही रूपों का वर्णन किया है । तुलसी और सूर की इस उभय-मूर्ति को भक्ति की प्यासी जनता ने सादर ग्रहण किया और अन्य भक्त कवियों ने पृथक्-पृथक् काव्य सृजन कर इन स्वरूपों को और भी व्यापक तथा सरस बनाने का यत्न किया । गोस्वामी हरिराय जी ने कृष्ण के लोक-रंजक रूप को ही विशेष महत्व दिया है । इस प्रसंग में कृष्ण के श्रृंगारिक स्वरूप के प्रति लगाव स्वाभाविक ही था । श्रृंगार वर्णनों में भी उन्होंने अन्य रीति कालीन कवियों की भाँति श्रृंगार के समस्त संभावित शास्त्रीय स्वरूप को ग्रहण नहीं किया, बल्कि स्वेच्छा के प्रवाह पर ही उनकी लेखनी चलती रही थी । यही कारण है कि कृष्ण की बाल लीलाओं में भी इस प्रकार के श्रृंगारिक - भाव निमग्न हैं ।

कवि का हृदय प्रेमा-भक्ति से आसक्त है । इसलिए कृष्ण के समस्त चरित्र में वह अपने भावों को संश्लिष्ट करना चाहता है । इस प्रसंग में कहीं-कहीं वह अपनी प्राचीरों से विलग भी हो जाता है, यथा--

मैया हो अबहू छाक नहिं आई ।
रहे गुपाल अकेले जब तब ग्वालिन निकट बुलाई ।
आलिंगन दै, अधर सुधारस, सीस छाक उतराई ।।२

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पदसाहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- ५७ ।
(२) वही, पद संख्या- ५८ ।

कृष्ण चरित्र में यहाँ बाल-लीलाओं के अन्तर्गत शृंगार की ये चेष्टाएं कवि के रसिक स्वभाव को ही व्यक्त करती हैं। अपनी ग्वाल-मंडली से विलग होकर एकान्त में छाक लाने वाली ग्वालिनी के प्रति उक्त चेष्टाएं, कृष्ण-चरित्र के 'हल्के पन' को ही व्यक्त करती हैं। यहाँ शृंगार वर्णन न तो प्रासंगिक लगता है, और न हीं उचित।

कृष्ण का युवा-स्वरूप 'गाय चरावन' से ही प्रारम्भ हो जाता है। उनके लिए छाक लाने वाली, लौटने पर अगवानी करने वाली, तथा निर्जन में प्रेमालाप करने वाली प्रमत्त यौवनाएं उनके क्षणिक वियोग से ही विव्हल हो उठती हैं। १ कृष्ण स्वयं भी रात-रात भर इन प्रमोन्मादिनी-कामिनियों के साथ सुरति केलि में निमग्न रहते हैं।२ हर समय गोपिकाएं उनसे भेंट करने के लिए व्याकुल रहती हैं।--

लटकत आवत गोधन के संग, सांझ समै भेटौं कैसैं।
तपत सकल अंग तलफत निसदिन जलते निकरि मीन व्हे जैसैं।।३

प्रेमासक्ति का इससे भी प्रगाढ़ रूप छेड़-छाड़ में दिखलाई देता है। यहाँ भी कवि के कृष्ण अपने पूर्ण रसिक रूप में ही प्रस्तुत हुए हैं। पनघट पर ब्रज-ललनाओं को रोकना तथा उनके प्रति अनेकानेक चेष्टाओं से अपने प्रेम को अभिव्यक्त करना, सभी कुछ कृष्ण चरित्र की रसिकता का ही महत्व प्रतिपादित करते हैं।

'छेड़-छाड़' का प्रसंग परकीया-नायिकाओं के मध्य औचित्य के अनुसार ही प्रस्तुत किया गया है। इसमें उभय पक्ष का वातलाप शृंगार के वातावरण को और भी उद्दीप्त करता है। यथा -

---

(१) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, संस्पा० श्री प्रभुदयाल मीतल, पद-६९
(२) वही, पद सं० ७२,
(३) वही, पद सं० ७३।

यह कौन टेब तेरी कन्हैयाँ, जब तब मारग रोकै ।
कैसे कैं भरन जाँहि पनियाँ जुबति जन,
आड़ौ ठाड़ौ व्है रहै कर लकुटी लिए दृग झोकै ।
गगरी डारि देत कबहु पीछैं ते आइ,
ऐसे बजात तारी, जासौं कौऊ चौंकै ।
'रसिक प्रीतम' की अटपटी बातैं सुनरी सखी,
समझी न परत याकी नौकै ।।१

इस प्रकार के चित्र वातावरण में शृंगार की पृष्ठ भूमि को उद्दीप्त ही कर पाए हैं, किन्तु रस-कोटि तक नहीं पहुँच पाए । कुछ चित्र संयोगावस्था के स्थूल रूप को लिए हुए रस-कोटि तक पहुँचने में पूर्ण समर्थ हैं :-

गेंद तक मारी सँवलिया नट नागर चित चोर ।
भयौ निसंक अंक भर लीनी भृकुटी नयन मरोर ।।२
+ + + + + +
नातर होती लराई दृगन में लाजहि बीच परी ।
घूँघट पट मेरौ सरकायौ मुरली अधर धरी ।
फेरि मारग दिस खेल लगाई, भँमर करी चकरी ।।३

इस प्रसंग में मुरली हरण, गोवर्द्धन लीला आदि के विविध चित्र प्रस्तुत किए गए हैं । दान-लीला में परकीया-रति का प्रगाढ़तम रूप प्रस्तुत हुआ है । कवि ने इसे युगल-पक्ष की वाक्-चातुरी से और भी रमणीय बना दिया है । स्वकीया-प्रेम में 'राधा का रूप' व 'दाम्पत्य प्रेम' के पद उल्लेखनीय हैं । दाम्पत्य-

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद सं० ९५ ।
(२) वही, पद संख्या- ९७ ।
(३) वही, पद संख्या- ९८ ।

प्रेम में नायिका द्वारा घूंघट निकालना, लज्जा -प्रदर्शित करना आदि स्वाभाविक चेष्टाएं सहज संजोई गई हैं ।

लाडिली लालन देखत लाढ़े ।
मोहन मुख देखन कौं आवत घूंघट पर दै आढ़े ।
कबहुक हरि के मुख देखन कौं, अपना बदन उघाढ़े ।।१

स्वकीया-रति प्रसंग में परकीया-केलि विलास की भाँति न तो स्वच्छन्दता ही है और नहीं सरस दृश्यों का बाहुल्य । कवि ने स्वकीया-रति वर्णन बहुत संक्षेप में किया है । यह प्रभावशाली भी नहीं है । कुछ-क पद ही इसमें विशेष प्रिय हैं :-

दुहुन की देख सखी, लपटानि ।
तरु तमाल मानौं आलिंगन, लता कनक की आनि ।
जमुना स्याम गौर तन गंगा संगम तीरथ जानि ।
परत तमोल- धार अधरन तें बीच सरसुति मानि ।।२

इसके अनन्तर परकीया -प्रेम प्रसंग में तो इनका अधिकांश श्रृंगार-काव्य रखा जा सकता है । उनके समस्त श्रृंगार वर्णन में शारीरिक चेष्टाओं की प्रधानता होने के कारण चित्र आकर्षित होते हुए भी स्थूल अवश्य है । "उत्तर मध्यकाल में विभिन्न परिस्थितियों और प्रेरणाओं के फलस्वरूप अलंकारिक चमत्कार और स्थूल श्रृंगारिकता का प्राधान्य हो गया है, जिस प्रकार से श्रृंगार के लौकिक क्षेत्र में स्थूलता के निषेध की आवश्यकता ही नहीं समझी गई, उसी प्रकार कृष्ण भक्ति काव्य में भी उसका समावेश बिना किसी हिचक के हुआ ।

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- १३५ ।
(२) वही, पद संख्या- १४३ ।

धर्म के नाम पर लिखे गये काव्य में स्थूलता का अति धर्म और काव्य में चित्रीकरण दोनों विकार की चरम सीमा तक पहुँच गए थे। रीति-कालीन कवियों की दृष्टि, विलास और उपभोग प्रधान थी। इसलिए इनकी रचनाओं में पुण्य-प्रेम भाव की परिष्कृत सूक्ष्मताओं का अभाव है, तत्कालीन कृष्ण काव्य परम्परा के कवि भी उसके अपवाद नहीं थे"। १ गोस्वामी हरिराय जी की श्रृंगारपरक रचनाओं में यह प्रभाव पर्याप्त रूप से देखा जा सकता है। जहाँ काव्य अनुभूत पक्ष पर विशेष आधारित होता है, वहाँ चित्र अपने स्वाभाविक रूप को प्रस्तुत करने के लिए पूर्ण आकार ग्रहण करता है। यही कारण श्रृंगारिक रचनाओं में स्थूलता का आभास देता है। जिस अनुभूत चित्र को प्रस्तुत करने के लिए कवि का हृदय अधिक रसलीन हो उठता है, वहाँ कवि चित्र के सर्वांग को वैविध्य के साथ प्रस्तुत करता है।

गोस्वामी हरिराय जी ने श्रृंगार-वर्णन में विशेष रस लिया है। उनके चित्र सूक्ष्म से सूक्ष्मतम् भावों में भी व्यक्त हैं और स्थूल से स्थूलतम् भावों में भी। जहाँ कवि एक दिशा में श्रृंगार की पृष्ठ-भूमि में केवल संकेत से ही कार्य चला लेता है, वहाँ दूसरी ओर उस चित्र को स्पष्ट रेखाओं के साथ भी प्रस्तुत करता है। प्रणय की प्रगाढ़ता के प्रति यह सांकेतिक चित्र कितना समर्थ है :-

जल क्यौं न पियौ जो तुम हौ पिय ! प्यासे।
समझ सोच भरि लाई जमुना जल, पीवत क्यौं अलसासे !
जल ही मिस तुम उझकत डोलत, नवल तिया रस रासे।
'रसिक प्रीतम' जल तुम नहीं पीयौ, चाहत अधर सुधारस आसे ।।२

यहाँ अंतिम चरण में कवि अपनी वृत्ति के अनुरूप विषय को फिर स्थूल बना

---

(१) ब्रजभाषा के कृष्ण भक्ति काव्य में अभिव्यंजना शिल्प, डा० सावित्री-सिन्हा, पृष्ठ- ५४

(२) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद सं० ९६ ।

देता है । इससे प्रथम तीन चरणों में उक्ति स्वाभाविक होते हुए भी प्रणय व्यापार का दृश्य अति सूक्ष्मता के साथ प्रस्तुत हुआ है । गोस्वामी हरिराय जी की नायिका बिहारी की भाँति विशुद्ध रति-केलि के लिये चुनी गई नायिका ही नहीं, वह कृष्ण की सेविका भक्त भी है । वह कृष्ण के प्रति पूज्य भाव भी रखती है और समाज की प्राचीरों में वह बद्ध भी है । उपर्युक्त उद्धरण में रस का परिपाक पूर्ण रूप से हुआ है, किन्तु जहाँ कवि 'रतिकेलि' के स्थूल चित्र प्रस्तुत करता है, वहाँ, रस अपनी पूर्णता पर होने पर भी हृदयग्राही नहीं बन पड़ा । प्रेम की सूक्ष्म झाँकियाँ कथ्य-वैचित्र्य के साथ - साथ रस-प्रगाढ़ की भी परिचायिका होती हैं । यह सौन्दर्य स्थूल चित्रों में प्राप्त नहीं होता है । सूक्ष्म उक्तियाँ विशेषकर 'दान-लीला' में देखी जा सकती हैं :-

नैंकु दूरि ठाड़े रहौ, कछुक रहौ सकुचाय ।
कहा कियौ मन भाँमते, मेरे अँचल पीक लगाय ।

यह उक्ति स्वाभाविक होते हुए भी व्यंग्यपूर्ण है । इसका संकेत आगे स्पष्ट होता है, जब कृष्ण इसका उत्तर देते हैं ।--

कहा भयौ अँचल लगी पीक हमारी जाय ।
याके बदले ग्वालिनी मेरे नैंनन पीक लगाय ।।१

'पीक' लाल रंग को व्यक्त करती है और लाल रंग अनुराग का सूचक है । प्रणय-व्यापार में यह विनिमय कितना स्वाभाविक है, जब नायक की पीक बोलते समय नायिका के अँचल पर जा लगती है, तब नायिका नायक से दूर रहने को कहती है कि इस प्रकार अँचल पर दाग लगाना अच्छा नहीं है, किन्तु कृष्ण अपनी स्वाभाविक पटुता के साथ इसका उत्तर देते हैं कि यदि मैंने यह

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- १०४ ।

धृष्टता की है तो तुम भी यह उद्दंडता करने के लिए स्वतंत्र हो, तुम स्वयं मेरे नयनों में अपनी पीक भर सकती हो अर्थात् मेरी आँखों में तुम भी अपना प्रणय-रंग घोल सकती हो। यह कथ्य चातुरी रस परिपाक को अधिक पुष्ट करती है। इसमें आश्रय और आलम्बन के कथ्य उद्दीपक बन कर भावों को पुष्ट करते हैं। इसी प्रकार :-

मन मेरो तारेन बसै अरु अंजन की रेख ।
चोखी प्रीत हियैं बसै याते साँवल भेख ।।१

कवि ने संयोग श्रृंगार के अन्तर्गत सुरतान्त स्थिति को भी अनेक रूप में चित्रित किया है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है :-

लाल संग रस रैन जागी ।
अरुन भए नैन पलकैं लगैं नाँ, सुरति रस अरसाई नेह पागी ।
देखियत हंक दसनन के गंड जुग, अधर अंजन उलटि लीक लागी ।।
'रसिक प्रीतम' कियौ आयु बस तै सखी कौन तिहु लोक तिय -
तो सी बड़भागी ।।२

सुरतान्त वर्णन में नायक एवं नायिका दोनों की सम्यक् स्थिति को व्यक्त किया गया है, विगत पृष्ठों में हम यह चर्चा कर आए हैं।

श्रृंगार वर्णन में आसक्ति, व्याकुलता, तन्मयता आदि के विविध चित्र कवि ने रचे हैं। तन्मयता की स्थिति यहाँ तक पहुँच जाती है कि नायिका स्वयं सामाजिक रीति-रिवाजों को त्याग कर अपने अभीष्ट को सर्वोपरि देखने लगती है। नायिका की यह ढिठाई प्रेम के प्रगाढ़ विश्वास को व्यक्त करती है :-

---

(१) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- १०४ ।
(२) वही, पद सं० १६६ ।

माई हौं हरि की, हरि मेरौ, जिनकौऊ बीच परौ ।
रस अनरस की हौं ही समझौं, न दुरै प्रीत कोई कछू करौ ।
क्यौं हू न छाड़ौ हरि कौ संग, जु औगुन जीवित धरौ ।
'रसिक प्रीतम' सौं प्रीत हमारी , दुरजन देखि जरौ ।।१

तन्मयता की एक और स्थिति भी द्रष्टव्य है, जिसमें विव्हला नायिका अपने तन-मन की सुधि ही बिसरा देती है :-

राखत ही पिय प्रीति गुप्त इन नैनन ही हौ दई उघारि ।
देखन लगी बदन छबि इक टक, सबहिंन मैं पट घूंघट बिसारि ।
छूटि गई सकुच कुटिल कच देखत, सहचरी सिगरी रहीं विचारि ।
'रसिक प्रीतम' तुम हौ मनमोहन, मन न रुकत हौं रही पचिहारि ।।२

इस प्रकार के संकेत कवि की प्रेमा-भक्ति को व्यक्त करते हैं । वैसे समस्त शृंगार वर्णन अपनी परम्परा से प्रभावित होते हुए भी उत्कृष्ट हैं ।

-:: वियोग ::-

गोस्वामी हरिराय जी ने शृंगार वर्णन में संयोग पक्ष को विविध रूपों में प्रस्तुत करके वियोग पक्ष को भी अनेक चित्रों में सँजो कर रखा है । वियोग के चारों प्रकार के भेदों -- पूर्वानुराग, मान, प्रवास तथा करुणा की अनेक झाँकियाँ उनके काव्य में प्राप्त होती हैं । विरह जन्य काम की दसों अवस्थाओं के भी अनेक चित्र उनके काव्य में विद्यमान हैं । जिनका उल्लेख 'वर्ण्य-विषय' नामक अध्याय में किया जा चुका है । इसके अनन्तर भी कवि ने वियोग की स्थितियों को विविधता से प्रस्तुत किया है ।

---

(१) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- २०० ।
(२) वही, पद संख्या- २०४ ।

'सनेह-लीला' नामक अख्यानक रचना में उद्धव-गोपी संवाद के माध्यम से कवि ने गोपिकाओं के विरह का प्रभावशाली वर्णन किया है। ये गोप कुमारियाँ उद्धव के आगमन से ही विव्हल हो उठती हैं। उपालम्भ की स्थिति में इनके विदग्ध-वाक्य उद्धव जैसे ज्ञानी पुरुष को भी विचलित कर देते हैं। ये गोपिकाएं अन्य वियोगिनी बालाओं से अपनी तुलना करती हुई कहती हैं :-

यह तो तिनको चाहिए जिनके मन अंतराय ।
दादुर तौ जल बिन जियै, मीन तुरत मर जाय ।
हैं दोऊ एक ठौर के, दादुर मीन समान ।
वे जल बिन मारुत भखैं, वे विछुरत तजे प्रान ।।१

नायक कृष्ण के चरित्र को लक्ष्य करती हुई वे कह उठती हैं :-

तन कारो मन सांवरो, कपटी परम पुनीत ।
मधुकर लोभी वास को निमिष एक के मीत ।।२

कहीं-कहीं कवि की यह नायिका जायसी की नायिका की तरह अपने विरह-अनुभूति का अतिक्रमण भी कर जाती है :-

हैं या भीतर दव जरे, धुंवा प्रगट नहिं होय ।
कै जिय जाने आपुनी, कै जिन लागी होय ।।३
+ + ++ + +
जल थोरो नाँहिन कछू, सागर नदी नवांन ।
स्वांति बूंद चात्रक हृदै अरु सब झूंठ समान ।।

---

(१) सनेह लीला- प्रका० वैष्णव हरगोविन्द हरीदास, नाथद्वारा, सं० २००७,
(२) वही ।
(३) वही ।

इस प्रकार के वातालिाप शृंगार की पृष्ठ-भूमि को उद्दीप्त करते रहते हैं। ऐसे प्रसंगों में ये उद्दीपन विभाव ही अनुभाव, संचारीभाव, विभाव आदि का संकेत करते हुए पूर्ण रसत्व की ओर अग्रसर होते हैं।

नायिका वियोग के ज्वर से पीड़ित है, उसे अब इस ज्वर के उपचार भी अच्छे नहीं लगते :-

विरह व्यापौ मेरे सब अंग।
सीतल वृथा उपाव करत क्यौं, काट्यौ मैन भुजंग ।
इन उपाय कहौ कैसे उतरै, वह तौ सखी अनंग ।
सदा जियावति ही सौ तौ अब, रही सुधा हरि संग ।
मुरली मंत्र सुनायौ कानन, वेदन स्यामा अंग ।।१

इस विरह प्रताड़ित नायिका का विश्वास अब नैराश्य के धुंधलके में भटकता-सा प्रतीत होता है। हताश मन का विवेक और विश्वास अब बुझता- सा ज्ञात होता है।२ दिन की परिधि युग-युगान्तर की सीमा में परिणित हो गई है।३ रात तारों को गिनते-गिनते गुजरती है।४ 'हारिल की लकड़ी' - सा यह मन अब प्रियतम से विलग नहीं रह सकता।५ इस वियोग विव्हला-बाला के प्राण अब तक अपने प्रियतम के लिये ही शेष रह पाए हैं, अन्यथा विरह ने तो अपने सभी शस्त्रास्त्र प्रयोग करके देख लिये हैं। अब तो थक कर विरह भी हार मान चुका है।६

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद सं० ३२६।
(२) वही, पद संख्या- ३३१ ।
(३) वही, पद संख्या- ३३२ ।
(४) वही, पद संख्या- ३३० ।
(५) वही, पद संख्या- ३३३ ।
(६) वही, पद संख्या- ३३४ ।

पूर्वानुराग की प्रारम्भिक - अवस्थाओं से अन्त तक की सभी अवस्थाओं में नायिका अपने अस्थिर मन के विकल्पों-संकल्पों को अनेक भावानुभावों द्वारा व्यक्त करती रही है। पूर्वानुराग में अभिलाषा, हर्ष, विस्मय, असूया, उत्कंठा, विकलता, धैर्य, विब्बोध, आवेग, जड़ता, चिंता, स्मृति, अमर्ष हास्य, दैन्य आदि विरह के सभी सोपानों पर यह कमनीया अपने चरणों को अधिष्ठित कर चुकी हैं। इसके सर्वांग पर विरह-विष का व्यापक प्रभाव चढ़ चुका है। कानों में प्रिय के वचन-श्रवण की लालसा है, तो नयनों में उस मनोहारिणी छवि को अवलोकन की उत्कंठा है। दोनों हाथों में उस मन-मोहन को बाँधने की अभिलाषा है, तो रसना को उसके सुधामय अधरों के पान करने की तड़प।१

रीतिशास्त्र के अनेक सिद्धान्तों का गोस्वामी हरिराय जी के काव्य में प्रयोग - सा लगता है। मध्यकालीन भक्त-कवियों ने प्रेमा-भक्ति के प्रश्रय में अपने माधुर्य-भावों को व्यक्त करने के लिए शृंगार की जिस रस-सरिता को प्रवाहित किया उसमें किन्हीं निश्चित कगारों का प्रतिबंध नहीं था। उनके हृदय के उद्गार अपने आराध्य के असीम रस में प्लावित हुए, उनकी रसमाधुरी में नि:शंक तैरते रहे हैं। गोस्वामी हरिराय जी ने भी अपने काव्य में शृंगार वर्णन के कुछ ऐसे ही चित्र प्रस्तुत किए हैं। विप्रलम्भ शृंगार में विरहानुभूति की तीव्रता उनकी साँस-साँस से प्रस्फुटित हुई है। वे अपने अभीष्ट के विछोह की कल्पना में जिस दशा की अनुभूति करते आए हैं, वह दशा काव्य शास्त्रियों के शास्त्र मंथन से नहीं प्रकटी, वरन् अनुभूत तथ्यों के प्रत्यक्ष प्रभाव ही ऐसे वातावरण के प्रति संकेत कर सकते हैं।

विरह चित्रण में कहीं-कहीं कवि के कथ्य में असंतुलन का भी आभास होता है। एक पद में विरह की विस्तृत पृष्ठ-भूमि निर्मित करके

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद सं० ३३४ ।

कवि ने अन्त में कृष्ण का संयोग दिखला कर चित्र को अव्यवस्थित-सा कर दिया है, यथा ---

हरि के विरह बिकल ब्रजबाल ।
बिछुरे बार बसन सुधि बिसरी, कहत फिरत बन बन गोपाल ।
कहाँ गए चित हरि लैके हरि, यौं बूझत द्रुम, बेली, जाल ।
- - - - - - - - - - - -।
कबहुक रोदन करत दीन अति, दीजै दरसन रसिक रसाल ।
अति उदार करुना रस पूरन, प्रगट भए श्रीपति तत्काल ।।१

यहाँ कवि ने विरह की अवस्था का चित्रण किया है । नायिका अपने प्रियतम के विछोह से व्याकुल हो उठी है, इसके केश बिखर गए हैं, सुधि बिसर गई है, वस्त्र अस्तव्यस्त हो रहे हैं, बन-बन में अपने प्रिय को ढूंढ़ती हुई फिर रही है । वृक्षों तथा वल्लरियों से पूछ रही है कि उसका प्रिय कहाँ है ? कभी अतिदीन होकर रो उठती है और कह उठती है कि हे प्राणपति अब मुझे दर्शन दीजिए- कवि ने यहाँ तक का वर्णन वियोग-अवस्था को पूर्ण रूप से चित्रित करने के लिए किया है, किन्तु इस दीन-दुखिया के दर्दको वह अधिक देर सह नहीं पाया और इसी पद के अन्तिम दृश्य में वह नायिका को उसके प्रिय से तुरन्त ही मिला देता है ।

अति उदार करुना रस पूरन, प्रगट भये श्री पति तत्काल ।

यहाँ विरह के प्रसंग में एक दम से संयोग का वातावरण अपनी मर्यादा तोड़ कर उपस्थित हो उठा है ।

प्रकृति जन्य उद्दीपक विभावों में कोई विशेष उल्लेखनीय बात दिखलाई नहीं देती । कुछ-क चित्र नवीन कल्पना से भी अभिप्रेरित हैं ।२

---

(१) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- ३००
(२) वही, पद संख्या- ३४६ ।

तथापि अधिकांश में परम्परा-पालन ही है ।

उपर्युक्त विवेचन में हम देख आए हैं, कि गोस्वामी हरिराय जी ने शृंगार वर्णन में अधिक रुचि प्रदर्शित की है । इनका शृंगार काव्य उनके भक्ति हृदय की अभिव्यक्ति था ; प्रेमा भक्ति जन्य ये माधुर्य-मानुकूल सरस चित्र कवि के दो रूपों को साकार करते हैं ; प्रथम तो कवि के कलाधर-रूप में शृंगार काव्य की विविध झाँकियों और उनकी कलात्मक अभिव्यक्ति को तथा दूसरी ओर कवि के भक्ति-भाव जो निरंतर-प्रारम्भ से अंत तक बने हुए हैं । कवि ब्रज-बालाओं में विचरण करता हुआ सा अपने आराध्य के समीप पहुँचने को व्याकुल रहा है ! यही कारण है कि कवि ने स्थल-स्थल पर प्रभु, दयाकर दीन दयाल आदि शब्दों का प्रयोग किया है ! संयोग चित्रण में भी कवि ने अपने आराध्य का सामीप्य प्राप्त कर उसे एकात्म की स्थिति तक पहुंचाने का यत्न किया है । कवि स्वयं की सत्ता को अवसर पड़ने पर उस 'जोति पुंज,' सर्वोपरि कृष्ण की सत्ता में विलय करने को सदैव तत्पर रहा है । यही कारण है कि वह गोपीभाव से रति-केलि में विविध प्रकार से अपने इष्ट को तुष्ट करने की चेष्टा करता रहा है । भावाधिक्य की यही स्थिति शृंगार के स्थूल-चित्रों का भी कारण कही जा सकती है !

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है, कि गोस्वामी हरिराय जी का शृंगार-काव्य परम्परागत होते हुए भी अपनी निजी विशिष्टता रखता है । भक्ति एवं दर्शन के विविध प्रभाव उनके शृंगारपरक वर्णन में समाहित हैं । कवि ने कृष्ण की शृंगार-लीलाओं के प्रसंग में एक सम्पन्न भाव-योजना को गठित किया है, जो पाठक के हृदय को पद-पद पर रस-सिक्त करता रहा है । गोस्वामी हरिराय जी ने कहीं भी किसी प्रकार के नियमों में बंधने की चेष्टा नहीं की, उनका काव्य स्वच्छन्द विचारों का ही वाहक रहा है ।

श्रृंगार वर्णन का विवेचन कर लेने के पश्चात् गोस्वामी हरिराय जी के काव्य में समाहित शान्त रस पर भी एक दृष्टि डाल लेना यहाँ अपेक्षित है ।

उनका समग्र काव्य चाहे वह वात्सल्य प्रधान हो अथवा श्रृंगार-प्रधान या शान्त से युक्त भक्ति की एक सूत्रता सर्वत्र देखी जा सकती है । शान्त भावों के प्रसारण में भी भक्ति की महत्ता ही सर्वोपरि है । शान्त-रस का आधार स्तम्भ ही भक्ति है, अत: भक्ति के महत्व प्रतिपादिन में ही शान्त-भावों को व्यक्त किया गया है ।

-:: शान्त-रस ::-

शान्त रस का समर्थन पंडितराज जगन्नाथ ने किया था, इनके अनुसार भरत मुनि ने आठ रस ही न मान कर शान्त सहित नौ रसों को मान्यता दी है [१]। आचार्य मम्मट ने भी शांत रस की पृथक् सत्ता स्वीकार की है [२]। आचार्य विश्वनाथ ने शान्त एवं वात्सल्य सहित दस रसों का उल्लेख किया है ; ३ संस्कृत के धर्म ग्रंथों में इस रस का पर्याप्त प्रयोग मिलता है । हिन्दी में भक्त कवियों ने इसे प्रमुख रूप से ग्रहण किया है ! कृष्ण भक्त कवियों में अष्टछाप के कवियों ने इसे विशेष महत्ता दी है । गोस्वामी हरिराय जी के काव्य में इस रस का संक्षिप्त रूप से ही प्रयोग हुआ है !

शान्त रस में शम या निर्वेद स्थायी भाव है । ब्रह्म का स्वरूप-बोध आलम्बन है । विरक्त व्यक्ति इसका आश्रय है । हर्ष जन्य अश्रु, आनन्द, रोमांच आदि अनुभाव हैं । सत्संग, सुखों की क्षणभंगुरता, ब्रह्म का स्वरूप - बोध

---

(१) 'मुनि वचनं चात्र प्रमाणम्'- रस गंगाधर-प्रथमानन, (चौ०सी०पृ०)- १२१ !
(२) 'निर्वेदस्थायिभावोऽस्ति शान्तोऽपि नवमो रस: ।'काव्य प्रकाश ४।३५ !
(३) साहित्य-दर्पण , आचार्य विश्वनाथ, ३।२५१ ।

इसके उद्दीपन विभाव हैं। निर्वेद, हर्ष, स्मरण, मति आदि संचारी भाव हैं।१ इस रस के अवगाहन में कृष्ण भक्त कवियों ने संसार से विरक्ति के भावों को ही अधिक उद्दीप्त किया है, गोस्वामी हरिराय जी के काव्य में भी यही स्वरूप देखा जा सकता है।

संसार से विरक्त हरिलीला में निमग्न कवि के भावोद्गार द्रष्टव्य हैं :-

कौन मात-तात,कौन , कहाँ को तू सुत बंधु,
जौ लौं यह देह तौ लौं नेह बानौ सपनौ है !
नारी हू निराली होत, नारी हू ते न्यारौ होत,
तौ हू तू अनारी नारी-नारी लगै जपनौ है।
श्री पुरुषोत्तम सम्हार, अपने जिय में विचार,
यह संसार सुख सोवत को सपनौ है ।
'रसिक' कहैं बार-बार, लाज हू न आवै तोहि,
हाथ लै कुल्हाड़ी पाँव मारत तू अपनौ है ।।२

यहाँ निर्वेद का भाव अपने पूर्ण प्रभुत्व पर है, पद का आकार छोटा होने पर भी भाव-प्राबल्य से यहाँ शान्त रस का स्थापन हुआ है। इसी प्रकार अन्य पद में कवि कहता है कि संसार में धन, पत्नी, पुत्र, पिता, माता सब चार दिन की सम्पत्ति हैं, जब यह शरीर पेड़ के पत्तों की तरह टूट कर निर्जीव हो जायगा, तब इसका सम्बन्ध इस पेड़ रूपी परिवार से कभी नहीं जुड़ पायगा, काल का कराल प्रहार जाने कब हो जाए, क्योंकि वह सदैव सिर पर मड़राता ही रहता है। इसलिए अरे अधम ! तू हरि का गुणगान क्यों नहीं करता :-

---

(१) देखिये- काव्य शास्त्र की रूप रेखा- श्री श्यामनन्दन शास्त्री, पृष्ठ- १३८।

(२) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- ६६९।

जनम पदारथ बह्यौ जात री ।
सुमरन भजन करौ केशव कौं जब लगि येहि नहिं गरत गात री ।
ये संगी सब चारि दिवस के, धन दारा सुत - पिता मात री ।
बिछुर बहोरि मिलन नहिं पावै, ज्यौं तरुवर के खरत पातरी ।
काल कराल फिरत सिर ऊपर, आइ अचानक करै घात री ।
समझत नाहीं मूढ़ बावरे, तजि अमृत फल विषहि खात री ।
'रसिक' कहत तू सर्व छांड़ि कै, गुन गुपाल के क्यौं न गातरी ।। १

जिस प्रकार इस माया-जन्य परिवार के सम्बन्ध का कुछ भी महत्व नहीं है, उसी प्रकार यह संसार भी रात्रि के स्वप्न की भांति है, जिसे हर अवस्था में सुबह होने पर टूटना ही है । इस संसार में यदि कुछ सत्य है तो वह केवल भगवान कृष्ण का रसाप्लावित गुणगान ही है, इसलिए अरे मन ! तू उसी का ध्यान कर :-

बिना गोपाल कोई नहीं अपनौ !
कौन पिता माता सुत घरनी, ये सब जगत रैन कौं सपनौ ।।२

शान्त रस के संदर्भ में, गोस्वामी हरिराय जीकेप्राय: इसी प्रकार के पद मिलते हैं । कवि ने इन थोड़े से ही पदों में अपनी आर्त्त-वाणी को अपने प्रभु के कर्णों तक पहुँचाने का यथाशक्य यत्न किया है । स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव, संचारी-भाव आदि सभी रसोपकरणों का समन्वय बड़े ही सहज ढंग से हुआ है ।

गोस्वामी हरिराय जी ने शान्त रस को व्यक्त अवश्य किया है, किन्तु इसमें वात्सल्य वर्णन जैसी न तो भाव प्रवणता ही है और न हीं शृंगार वर्णन जैसी सूक्ष्म अभिव्यंजना ।

गोस्वामी हरिराय जी के काव्य में समाहित वत्सल, शृंगार एवं शान्त रसों के अब तक के विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि गोस्वामी

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या-- ६६८ ।
(२) वही, पद संख्या --६६६ ।

श्री हरिराय जी के साहित्य में भक्ति की महत्ता सर्वत्र स्वीकारी गई है। कवि ने जहाँ कृष्ण चरित्र की शृंगार लीलाओं को व्यक्त किया है, वहाँ कवि के दो रूप उपस्थित होते हैं। एक तो, जहाँ उन्होंने शृंगार के स्थूल चित्रों में संभोग की मांसल अभिव्यक्ति की है, वहाँ कवि का भक्त-रूप इतना दब गया है कि उन रचनाओं को भक्ति रचना स्वीकार करने में हिचकिचाहट होती है। दूसरा स्वरूप यह भी है, कि उन्होंने स्थान-स्थान पर अपनी मर्यादा को रक्षित करने के लिए ऐसे स्थूल प्रसंगों को अधिक महत्व न देकर मौन-संकेतों से ही काम चला लिया है।

जहाँ तक उनकी शृंगार रचनाओं का प्रश्न है, "इन कृष्ण-भक्त-कवियों का उद्देश्य घटना वर्णन अथवा कथा कहना नहीं था, इनका उद्देश्य अपने प्रभु के प्रेम में मत्त होकर उनके सौन्दर्य का वर्णन करते हुए मानस-भाव-रसात्मक को पदों में बहा देना, जिससे सिक्त होकर जन-मनोभूमि में भगवद्-भक्ति का अंकुर फूट निकले"।१ इन भक्त कवियों के शृंगार वर्णन को उनकी साधना की आध्यात्मक पृष्ठ-भूमि भी कहा गया है।२ किन्तु जहाँ शृंगार वर्णन में संभोग और वासना के नग्न चित्र निरूपित किए गए हैं, वहाँ इस प्रकार की सभी मान्यताएं खण्ड-खण्ड होकर बिखर जाती हैं। गो० हरिराय जी के पद साहित्य में रति-प्रसंग के कुछ इसी प्रकार के वर्णन मिलते हैं:-

आज दसहरा सुभदिन नीकौ, विजय करौ पिय प्यारी पै आज ।
घेरी है विकट मदन गढ़ गाढ़, तोर मँड़ करौ लालन राज ।
इतनी बात सुनत नंदनंदन, विहँसि उठे दल कीन्हौं साज ।
'रसिक' प्रभु पिय रति-प्रति जीत्यौ, नूपुर किंकनी रुनझुन बाज ।।३

---

(१) सूर और उनका साहित्य, - डा० हरबंश लाल शर्मा, पृष्ठ- २८९ ।
(२) भक्त कवि व्यास जी, - श्री वासुदेव गोस्वामी, पृष्ठ- १५४ ।
(३) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- ३७० ।

इस सन्दर्भ में कहा जा सकता है कि भक्त भगवान् से अनुनय कर रहा है, कि इस विषय-वासना से ग्रसित जाल को ध्वन्स करके आप स्वयं मेरे अन्तस् में प्रविष्ट हो भक्ति के रस में मुझे निमग्न कीजिये। यहाँ तक तो अर्थ-संगति को बलात् घसीटा जा सकता है, किन्तु अन्तिम पंक्ति में 'रसिक प्रभु पिय रति-पति जीत्यौं, नूपुर किंकनी रुन-झुन बाज' जैसे स्थूल चित्र को आध्यात्म के किसी भी संदर्भ से जोड़ना असंगत ही होगा। इतना ही नहीं कहीं-कहीं तो कवि ने नायक का अति धृष्ट रूप प्रस्तुत करके वासना के मांसल-चित्र निरूपित किए हैं :-

करि डारी चिरकुट चोली की, गहि आलिंगन लीनी।
दै कपोल दोऊ दिस चुंबन, अधर सुधारस पीनी ।।१

कंचुकी को चिथड़े - चिथड़े करने वाला कवि का यह नायक अपनी उद्दंडता का एक और धृष्ट-स्वरूप प्रस्तुत करता है :-

होरी खेलै री नंदलाल।
- ।
हरैं हरैं जुबतिन में धंसि कैं, दै भुज चुंबत गाल ।
बदन उघारै, विहँसि निहारै, तिलक बनावै भाल ।
कबहुक आलिंगन दै भाजै, आइ मिलै ततकाल ।
कबहुक ढिंग व्है अचरा खैंचै छुवावै नीरज नाल ।।२

आध्यात्मिक दृष्टि से कहा जा सकता है कि ब्रह्म प्राणी के बदन को उघाड़ कर उसके सत्य रूप से उसे परिचित कराता है, तत्पश्चात् पुष्टि सम्प्रदाय में प्रचलित तिलक के प्रति उन्हें आकर्षित करता है। एक और वह माया-ग्रसित

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- २१६।
(२) वही, पद संख्या- ३८५ ।

प्राणी को उसके स्वरूप का साक्षात्कार कराता है, तो दूसरी ओर 'तिलक' के प्रति आकर्षित कर वैष्णव धर्म का संकेत भी करता है। यहाँ तक अर्थ को तोड़ा-मरोड़ा जा सकता है, किन्तु आगे की पंक्तियों से इस अर्थ का पुन: मेल नहीं मिला जा सकता, प्रत्यक्ष में जब अर्थ सुस्पष्ट है तो उसे आध्यात्मिक संदर्भ से नहीं जोड़ा जा सकता।

> जैसा कि पूर्ववर्ती पृष्ठों में कहा जा चुका है कि गोस्वामी हरिराय जी का काव्य उनकी भक्ति-भावना से ही उदित हुआ है। भक्ति के आद्यन्त निर्वाह में उनके कृष्ण-चरित्र का उदाहरण दिया जा सकता है, जो उनके काव्य में सर्वत्र विद्यमान है। कृष्ण-चरित्र के सरस वर्णनों में जहाँ कवि ने कृष्ण की शृंगार लीलाओं का चित्रण किया है, वहाँ वह अपनी पूर्ववर्ती काव्य धारा से पूर्ण प्रभावित दृष्टि गोचर कहा जा सकता है। गोस्वामी हरिराय जी के काव्य के विवेचन से कवि के दो रूप स्पष्ट होते हैं-- घोर शृंगारिक कवि के रूप में तथा भक्त कवि के रूप में। भक्ति यथास्थल गौण अवश्य है, किन्तु उसका तीव्र या मंथर प्रवाह कहीं न कहीं है अवश्य, शृंगार के स्थूल चित्र में भी नायक-नायिका का कृष्ण राधा रूप में होना, भक्ति के प्रति उनके आग्रह को व्यक्त करता है।

अन्त में कहा जा सकता है कि भक्ति उनका धर्म था, जिसका उन्होंने सर्वत्र निर्वाह किया है, और शृंगार उनकी वृत्ति की लालसा थी, जो अपने चरमोत्कर्ष पर विद्यमान रही है। कवि के उभय रूप अपनी-अपनी सीमाओं में पूर्ण सम्पन्न रहे हैं। कवि की अभिव्यक्ति पूर्णतया उसके भावोद्वेगों पर आधारित रही है। जब उसका हृदय भक्ति-भावना- के पावन क्षेत्र में विचरण करता है, वह कृष्ण की 'माधुरी-मूरत' के विविध स्वप्नों में निमग्न हो जाता है। जहाँ कृष्ण-चरित्र के वर्णन में भक्ति का उद्वेग रहते हुए भी शृंगार की धारा आ टपकती है, कवि उन क्षणों में अपनी सीमाओं का उल्लंघन न कर, मौन संकेत करके ही रह जाता है, यथा :-

'निस लीला कह्यौ कैसैं कहैं, सो तौ निज जन मन मैं लहैं'।।१

इससे इतर जहाँ कवि के भावोद्गार श्रृंगार प्रधान होकर व्यक्त हुए हैं, वहाँ भक्ति को गौण बनाकर रति-वर्णन के संदर्भ में चित्र अधिक स्थूल बन पड़े हैं। कवि अपने उभय-स्वरूपों में पूर्ण सफल हुआ है।

अन्त में कहा जा सकता है कि गोस्वामी हरिराय जी का काव्य अपनी भाव-सम्पत्ति के कारण अधिक मार्मिक तथा विविधता युक्त है। कवि ने जहाँ मानसिक वृत्तियों के चित्रण में अपनी कुशलता का परिचय दिया है, वहीं उसने कृष्ण की रूप-छवि का अंकन भी वारी-की से किया है। गो० हरिराय जी का काव्य श्रृंगार और भक्ति रस से आप्लावित तो है ही, किन्तु उसमें वात्सल्य और शान्त रस की छींटें भी कुछ गहराई लेकर पड़ी हैं, जिनके प्रभाव को कम नहीं माना जा सकता, यह दूसरी बात है कि गोस्वामी हरिराय जी का काव्य अधिकांशत: मुक्तक होने के कारण सर्वत्र रस-परिपाक प्रस्तुत नहीं कर सका है, तथापि भाव-वैविध्य अपनी पूर्ण उत्कृष्टता पर आसीन है।

जिस प्रकार कवि के काव्य में विविध भावों की योजना सुन्दर ढंग से हुई है, उसी प्रकार उनके काव्य में कला के विभिन्न उपकरण भी अपने उत्कृष्ट रूप में प्रस्तुत हुए हैं। अगले अध्याय में गो० हरिराय जी के काव्य में समाहित कला के विविध पक्षों पर विचार किया जायगा।